Original Research Paper | Arts | Volume : 07 | Issue : 11 | Nov 2022 | e-ISSN : 2456-5040

पुष्टिमार्गीय भक्ति संगीत : एक अवलोकन

डॉ. महेश चंद्र पाण्डे

एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग, एम.बी.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हल्द्वानी (नैनीताल)

ABSTRACT

मनुष्य जीवन को उच्च गति व विकास पद पर ले जाने का प्रमुख साधन संगीत बना। जब तक संगीत का भक्ति स्वरूप समाज में उच्च स्थान पर रहा, तब तक धर्म भी उच्च आसन पर विराजमान रहा। परंतु इसके विपरीत जब संगीत का मुख्य उद्देश्य श्रृंगार वा विलासिता बन गया तभी से धर्म व समाज अपने उच्च आसन से च्युत होना आरंभ हो गया। तब केवल भक्ति संगीत के माध्यम से ही, धर्म की प्रतिष्ठा को बढ़ाकर, समाज को स्थिर रूप प्रदान किया गया।

भक्ति रस की इस धारा को संगीत में प्रवाहित करने का श्रेय सूर, तुलसी, कबीर तथा मीरा आदि गायक संतो को जाता है। श्रृंगार, वीर व करूंण आदि नव रसों के अतिरिक्त, भक्ति रस को स्वतंत्र रस के रूप में प्रतिस्थापित करने का श्रेय भी इन्हीं को है। मध्यकालीन दरबारी गायकों के द्वारा केवल श्रृंगार प्रधान व निरर्थक गीतों का प्रचार किया जाता था, उसके स्थान पर पं.भातखंडे तथा पंडित पलुस्कर जी ने सूर, तुलसी और मीरा आदि भक्तों के भजनों को विभिन्न रागों में बांधकर, नए आयाम का सृजन किया तथा शास्त्रीय संगीत को पावन एवं पवित्र दिशा की ओर उन्मुख किया।

उत्तर प्रदेश में तुलसी, राजस्थान में मीरा, बंगाल में चैतन्य, उड़ीसा में जयदेव, महाराष्ट्र में रामदास तथा गुजरात में नरसी आदि भक्तों ने अपने रसमय कीर्तनों के माध्यम से समस्त भारत देश को भक्ति विभोर करने का कार्य किया। सही मायने में, संगीत को समाज में उच्च स्थान दिलाने का श्रेय, ऐसी ही महान विभूतियों को जाता है। आज मथुरा तथा वृंदावन आदि कइ मंदिरों में ईश्वर की आराधना के लिए ध्रुपद व धमार आदि गायन शैलियों का प्रयोग किया जाता है। भक्ति संगीत शांत, गंभीर तथा प्रौढ़ प्रकृति का होता है। संक्षेप में भक्ति अथवा आध्यात्मिकता संगीत की आत्मा है और इसके अभाव में संगीत एक मलिन शरीर से अधिक और कुछ शेष नहीं रहता।

प्रस्तावना

यह सर्व विदित है कि संगीत की उत्पत्ति 'नाद' से हुई है और नाद परब्रह्म परमेश्वर का ही साकार स्वरूप है। जिस प्रकार मणि के प्रकाश मात्र से ही, उसकी प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला, मणि तक पहुंच जाता है, वैसे ही नाद की उपासना करने वाला भी नाद की आभा से सहज ही ब्रह्म के निकट पहुंच जाता है।

नाद ब्रह्म से ही सृष्टि का सृजन हुआ है तथा सृष्टि से पुनः ब्रह्म में लीन होने हेतु ही, संगीत का सृजन हुआ है। परंतु, क्या वह मोक्ष रूपी संगीत, आज के प्रचलित संगीत के ही समान है? क्या मोक्ष प्राप्ति हेतु सृजित 'भक्ति संगीत' सर्वदा से ऐसा ही था? क्या भक्ति संप्रदायों के द्वारा इसके मार्जन में सहयोग हुआ है? और क्या इस भक्ति संगीत में, संगीत का शास्त्रीय पक्ष भी व्याप्त है?

जहां एक ओर अद्वैतवाद के चरम सीमा पर होने से संपूर्ण संसार नीरस हो चला था तथा जनसाधारण भक्ति से सर्वथा विमुख हो जा रहा था, वही ऐसे समय में श्री आचार्य वल्लभ जी ने पुष्टि संप्रदाय का सृजन किया। जिसमें उन्होंने ईश्वर को सर्व सुलभ बताया। केवल सन्यासी ही नहीं अपितु एक गृहस्थ भी किस प्रकार उस परब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है, ऐसा मार्ग बताया।

भारतवर्ष प्राचीन काल से ही धर्म प्रधान देश रहा है। यहां की भक्ति परम्पराएं यद्यपि बहुत से संघर्षों का सामना करती रही, परंतु प्रत्येक आघात के पश्चात और भी नवीन रूप में, घोर क्रांति की भांति सर्वलोक में व्याप्त हुई। इन सब कृत्यों में, परंपरा, संस्कृति तथा धर्म की रक्षा हेतु सबसे आगे रही मंदिरों में व्याप्त भक्ति परंपरा। इस भक्ति परंपरा के विषय में; जिसको आज मंदिर या हवेली संगीत के नाम से जाना जाता है।

पुष्टिमार्ग में संगीत

शास्त्रीय संगीत स्वयं, मंदिर संगीत की नींव अथवा आधार है। व्याकरणिक दृष्टि से पुष्टि का तात्पर्य पोषण से है, परंतु हवेली / मंदिर संगीत में इसका अर्थ केवल शारीरिक पोषण से नहीं अपितु आत्मा के पोषण से भी है। शास्त्र में वर्णित प्रत्येक शब्द अपने विशिष्ट व कुछ गुप्त अर्थ रखते हैं, उसी प्रकार यहां प्राप्त पुष्टि, श्रीमद्भागवत के 'पोषणं तदनुग्रह' सूत्र पर आधारित है। भगवान का अनुग्रह ही पोषण या पुष्टि है, इसके अभाव में कदाचित कुछ–कुछ शारीरिक पोषण हो भी जाए परंतु आत्मिक रूप में जीव का पोषण/पुष्टि 'पोषणं तदनुग्रह' के बिना असंभव है। पुष्टिमार्ग में संगीत का विशेष महत्व माना गया है, इसको राग भी कहते हैं।

गायन, पुष्टिमार्ग में कीर्तन कहलाया जाता है तथा इसका गान करने वाला कीर्तनिया।अन्य संप्रदाय के मंदिरो में सेवा अथवा पूजा मंत्र उच्चारण द्वारा पूर्ण की जाती है परंतु पुष्टिमार्गीय संगीत में, कीर्तन के बिना पूजा संपूर्ण नहीं मानी जाती है। सेवा का क्रम पूर्णतया अधूरा ही है यदि कीर्तन न हो।

'अष्टछाप' आदि के पदों का गान करके ही कीर्तन को पूर्ण माना जाता है। इन कीर्तनों को ही पुष्टिमार्गीय हवेली/मंदिर संगीत मे ; पूजन हेतु; मंत्रोच्चारण का स्थानापन्न समझ गया है। मूलत वैष्णवों के संगीत को ही पुष्टिमार्गीय संगीत कहां गया है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति संगीत का यह, वर्तमान भव्य स्वरूप मात्र एक अवधारणा नहीं है, अपितु इसके पीछे अनेकों, महान वैष्णव आचार्यों के अथक प्रयास व परम विशुद्ध भक्ति है।

धर्म और संगीत

वेदों के अनुसार– 'धर्मो विश्ववस्य जात प्रतिष्ठा।' अर्थात धर्म के सहारे पर ही प्रत्येक पदार्थ की सत्ता है।

संगीत का प्रारंभ भी धार्मिक भावनाओं के स्फुरण एवं उनकी अभिव्यक्ति से ही हुआ है। विश्व की सभी प्राचीन संस्कृतियों में धर्म एवं संगीत का गहरा संबंध रहा है। सामान्यतः धर्म की परिभाषा करने पर हमारे मस्तिष्क में मंदिर–मस्जिद, प्रार्थनाएं–प्रवचन, शब्द–कीर्तन व जप–तप आदि विषयों का भाव उत्पन्न होता है, किंतु यह सब तत्व धर्म नहीं है। अपितु धर्म को समझने के विभिन्न मार्ग है। यह मार्ग ही मानव मात्र को मोक्ष की ओर ले जाते हैं। प्रायः हमें, रागबद्ध धार्मिक संगीत साहित्य के अतिरिक्त, ऐसी रचनाएं भी प्राप्त होती है, जो गेय काव्य में है और केवल धार्मिक होने के नाते विशेष पूजा–अर्चना के लिए ही लिखी गई है। जैसे, घरों में प्रचलित भजन और कीर्तन के संग्रह। संगीत को धर्म से अलग करना असंभव ही जान पड़ता है।

Copyright© 2022, IEASRJ. This open-access article is published under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License which permits Share (copy and redistribute the material in any medium or format) and Adapt (remix, transform, and build upon the material) under the Attribution-NonCommercial terms.

भारतीय संगीत के इतिहास का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है, कि उसका दृष्टिकोण, सदैव आध्यात्मिक अवस्थाओं को मान्यता देना रहा है। धर्म का अपना कोई विशेष अथवा अलग संगीत नहीं होता। उसकी अपनी गायन की अलग–अलग शैलियां जरूर होती हैं। जैसे– यज्ञ गान, कीर्तन तथा पदगान आदि।

'प्रणव भारती' में पंडित ओंकार नाथ ठाकुर ने भी नाद को ब्रह्म का सगुण रूप कहां है। ब्रह्म की अनुभूति, प्रणव की साधना से अथवा नाद की उपासना से सिद्ध होती है।

आदिकाल में संगीत की उत्पत्ति का एकमात्र कारण ब्रह्म तत्व की प्राप्ति अथवा मोक्ष प्राप्ति था, परंतु कालांतर में उसमें श्रृंगारिकता का पुट बढ़ने से, वह शुद्ध संगीत, अश्लीलता की ओर अधिक झुक गया। अतः देवि– देवताओं से हमारे संगीत को जोड़ने का प्रयोजन, संगीत में भक्ति रस के बाहुल्य और अश्लीलता का निराकरण करना है। इसी प्रयोजन को ध्यान में रखकर हमारे विद्वानों ने संगीत कला को धर्म से संबंधित किया। हिंदू धर्म में तो संगीत को, भगवान का, मनुष्य के लिए, अद्वितीय आशीर्वाद समझा जाता है।

सभी सभ्यताओं में संगीत का जन्म भक्ति भावना से हुआ है और इसी में उसका निरंतर पल्लवन और विकास भी होता रहा है। सामवेद का संगीत भारत के इतिहास का प्रथम भक्ति संगीत होने का अधिकारी है, यह वह संगीत है जिसमें भक्त अपने आराध्य के प्रति अद्भुत श्रद्धा की भावना को स्वरों में बनता है।

मंदिर अथवा भक्ति का, संगीत से संबंध, कोई नवीन शोध नहीं है अपितु वैदिक काल से अथवा उससे भी परे,भक्ति का श्रेष्ठ मध्य संगीत को माना जाता है। जैसे– नृत्य की उत्पत्ति भगवान शंकर से मानी जाती है, माता वागेश्वरी को वीणा धारी और संगीत तथा साहित्य की देवी माना जाता है। भगवान श्री कृष्ण की मुरली को समस्त विश्व जानता है। इस प्रकार की अनेक कथाएं संगीत और देवताओं के संबंध में लोक प्रचलित है, जो इस बात का प्रमाण है कि संगीत पवित्र और पूजनीय है। यहां भक्ति और संगीत घनिष्ठ रूप से संबंधित ही नहीं हुए, बल्कि संगीत, धर्म का प्राण भी बन गया।

कालांतर में आक्रांताओं के धर्म विरोधी आंदोलनों से संगीत के, शास्त्रीय वह आध्यात्मिक, दोनों पक्षों को बहुत क्षति पहुंची, परंतु भारत के महान संगीताचार्यो तथा भगवद्भक्तों के कारण यह संगीत, विकट परिस्थितियों में भी संरक्षित हो पाया।

मंदिरों के संगीत का पुष्टि संप्रदाय में विकास

श्रावणं कीर्तनं विष्णु स्मरणं पाद सेवनामं।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मानिवेदनम्।।

उपर्युक्त श्रीमद् भागवतम् का श्लोक पुष्टिमार्ग का आधार है। जिसमें की वल्लभाचार्य जी द्वारा कीर्तन को सर्वोपरि बताया गया है। आचार्य वल्लभ इसी का अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि, ईश्वर के गुणगान में जो आनंद है वह लौकिक पुरुषों के गुणगान में नहीं है तथा जैसा सुख भगवान के गुणगान से प्राप्त है वह सुख 'भगवान के ज्ञान स्वरूप की मोक्षावस्था में भी नहीं है'। अतः सर्वेश्वर ब्रह्म में प्रीति रखने वालों को सदैव–सदैव प्रभु का गुणगान अर्थात कीर्तन करना चाहिए। कीर्तन को अधिक स्पष्ट व स्थाई रूप प्रदान करने हेतु आचार्य वल्लभ ने पुष्टिमार्ग में इसे सेवा के अभिन्न अंग के रूप में विराजमान करा तथा प्रातः जगाने से सायंकाल के बाद शयन तक प्रत्येक सेवा में 'कीर्तन सेवा' को स्थान दिया। पुष्टि मार्ग में यदि इसके उद्भव की बात की जाए तो परंपरा साहित्य के अनुसार यह सब आचार्य श्री वल्लभ की ही मौलिक दिन है। आचार्य वल्लभ को यह संगीत कहां से प्राप्त हुआ यह बात संप्रदाय में आज भी प्रचलित है, परंतु वह प्रकांड विद्वान, कुशल व सफल धर्मोपदेशक थे। इन सबसे बढ़कर वह भगवान के सर्वप्रिय भी रहे, तो इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने संगीत सीखा हो या फिर ईश्वर द्वारा उन्हें यह विद्या प्राप्त हुई हो। जब उन्होंने देखा होगा कि ईसा की सातवीं व आठवीं सदी में दक्षिण में शिव और विष्णु की भक्ति का प्रचार किया गया तो, तब उसके प्रचार का सबसे प्रभावशाली माध्यम, आलवार भक्तों के वे तमिल गीत थे जिन्होंने लोक भाषा का सहारा लेकर सामान्य जनजीवन को अपनी ओर सहजता से आकृष्ट कर लिया। अतः आचार्य श्री भी, ब्रिज को अपना कार्यक्षेत्र केंद्र चुनकर वहां की लोक भाषा, ब्रिज में, अन्य भाषा के व संस्कृत आदि के श्लोक को परिवर्तित कर, उनको मंत्रों से भी ऊंचे पद पर ले गए।

यह संस्कृत मंत्र उच्चारण वाले श्लोक प्रायः श्री विष्णु स्वामी संप्रदाय से लिए गए हैं। क्योंकि वल्लभाचार्य जी को भी विष्णु स्वामी संप्रदाय का ही अनुयाई समझा जाता है;जिसका उल्लेख काफी ग्रन्थों में प्राप्त होता है, जैसे– संप्रदाय कल्पतरु १६५१, भगवद्तत्व दीपिका, संप्रदाय प्रदीप(५.५६.६२),

कवि बृजराज का वन्दना श्लोक, कवि विष्णु दास जी की रचना तथा स्वयं वल्लभाचार्य कृत निबंध,कांकरोली के इतिहास आदि में प्राप्त होता है; अनुमानतः श्री विष्णुस्वामी मत के सिद्धांतों को जब वल्लभाचार्य जी ने सुलभ शैली में जनसाधारण के समक्ष रखा होगा, तब वह स्वयं ही वल्लभ संप्रदाय अथवा पुष्टिमार्ग के नाम से जाने जाने लगे होंगें । वहां सेवा के लिए प्रयुक्त संस्कृत के श्लोक को ब्रज भाषा के पदों से बदल दिया गया। विष्णुस्वामी संप्रदाय की सेवा में प्रयुक्त श्लोक का, पुष्टिमार्गी कीर्तन प्रणाली के पदों से, बहुत संबंध है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जो सेवा अन्य संप्रदायों में मंत्रोच्चरण से लि जाती थी, वही सेवा पुष्टिमार्ग के मंदिरों में कीर्तन (राग आधारित) से ली जाने लगी ।

ब्रज भाषा के माधुर्य के विषय में कोई भी संदेह नहीं कर सकता,अतः ब्रज भाषा के यह पद भी, संप्रदाय में अभूतपूर्व महत्व धारण किए हुए हैं। इस ब्रज भाषा के माधुर्य के कारण ही, भारतीय शास्त्रीय संगीत का निबद्ध गायन, बहुतायत से, बृज भाषा में सुरक्षित है। संप्रदाय में जिस व्यक्ति को सर्वाधिक पदों का ज्ञान होता है, वह उतना ही धार्मिक दृष्टि से संपन्न माना जाता है।

पुष्टिमार्गीय राग अथवा कीर्तनः संक्षिप्त वर्णन

पुष्टिमार्ग का राग अर्थात कीर्तन रूपी संगीत श्री वल्लभाचार्य जी की ही मौलिक अवधारणा का प्रतिफल माना जाता है। क्योंकि प्रत्येक संप्रदाय में कीर्तन तो है परंतु अनिवार्यतः कीर्तन या कीर्तन का विशेष स्थान नहीं है।

वहीं श्री वल्लभाचार्य जी द्वारा उद्धत पुष्टिमार्गीय संप्रदाय में कीर्तन, भक्ति का अभिन्न अंग माना गया है। कीर्तन के अभाव में साधना, पूजा, अर्चना अपूर्ण ही मानी जाती है। कीर्तन व कीर्तनिया सेवा विधि का एक आवश्यक अंग है। यहां पर कीर्तन को मंत्रो का स्थानापन्न समझ गया है। यह गायन विधि शुद्ध शास्त्रीयता पर आधारित है, नित्य के सेवा क्रम के ही अनुसार कीर्तन की अपनी प्रणालिकाएं है, व कीर्तन के अनुसार ही रागों का नियोजन भी शास्त्रीय व प्रामाणिक है।

इसे ऐसे समझ सकते हैं कि जिस प्रकार शास्त्रीय संगीत में रागों को समयाधार पर विभाजित किया गया है; जैसे प्रथम प्रहर भैरव थाट, द्वितीय में राग भैरव आधारित राग आदि; वैसे ही सेवा के नित्य क्रम में, कीर्तन सेवा के अनुसार भी सर्वप्रथम राग भैरव आदि रागों से आरंभ होकर बिलावल, तोड़ी, असावरी आदि रागों से गुजरते हुए पूर्वी,कल्याण आदि से सांयकाल में प्रवेश करता है, इसी क्रम में तत्पश्चात शयन के लिए भी कीर्तन रागाधारित ही गाए जाते हैं।

शयन हेतु बिहाग आदि रागों की स्वरावलियों का (वातावरण में रात्रिगम्य निःस्तब्धता लाने के लिए) प्रयोग होता है।

यह तो समय अनुसार कीर्तन गायन का विभाजन हुआ,अब इसी क्रम में ऋतुओं के अनुसार भी राग वर्गीकरण इन मंदिर संगीतों के कीर्तनों में मिलता है।

जैसे बसंत ऋतु में आठो प्रहर राग बिहाग गाया जाता है। राग अर्थात हवेली संगीत का मुख्य प्रयोजन बताते हुए आचार्य श्री वल्लभाचार्य जी कहते हैं कि–

"अपने सुख के लिए परमानंद स्वरूप परमात्मा का कीर्तन गान करना चाहिए। इस प्रकार के गायन से जैसा सुख प्राप्त होता है वैसा सुख, सुखदेव आदि मुनीश्वरों को आत्मानंद में भी नहीं मिलता, फिर दूसरों का तो क्या ही कहना। इसलिए सब कुछ छोड़कर मन के निरोध सदैव प्रभु का गुणगान करना उचित है, ऐसा करने से ही सच्चिदानंद परमात्मा की प्राप्ति होती है।"

गर्म व ठंडे दिनों के राग

इस प्रकार हम पुष्टिमार्ग कीर्तन प्रणाली की गर्म और ठंडी प्रकृति के दर्शन करते हैं परंपरा में वर्तमान व्यवहार के अनुसार रगो का वर्गीकरण सामान्यतः इस प्रकार है–

ठंडे रागः
प्रातः कालीनकृ भैरव, रामकली, देव गंधार, बिलावल, विभास, मारू, सारंग, धनश्री, सुआ, एवं मल्हार आदि राग।

सांयकालिनकृ– पूर्वी, मोरी, नट, कल्याण, एवं ईमन, सूरत, कान्हड़ा, आड़ाना, जयजयवंती, मल्हार आदि राग।

गर्म रागः
प्रातः कालीनकृ– ललित, मालकोश, पंचम, शत, तोड़ी, असावरी, मालवा, बसंत आदि राग

सांयकलीन– नायकी, केदार, विभाग, राइसो, जयश्री, काफी, वसंत आदि राग।
नोट–
१. भैरव तथा पूर्वी राज लगभग पूरे वर्ष क्रम अनुसार सुबह और शाम को गए जाते हैं
२. कामवान (राजस्थान) में राग सारंग १२ महीने गया जाता है।
३. राग मालव के नव विलास के पद, शयन में गाए जाते है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

1. संगीत रत्नावाली, अशोक कुमार ,अभिषेक पब्लिकेशन नई दिल्ली 2015
2. पुष्टिमार्गीय मंदिरों की संगीत परंपरा हवेली संगीत, प्रो. सत्यभान शर्मा, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली 1999
3. निरोध लक्षणम्, प्रथम पीठ पब्लिकेशन्स
4. स्वामी मुकुंदन की टीका–भगवत गीताः द सॉन्ग ऑफ गॉड,रूपा पब्लिकेशन इंडिया,2022
5. शांडिल्य भक्ति सूत्र, गीताप्रेस गोरखपुर,1923
6. नारद भक्ति सूत्र, गीताप्रेस गोरखपुर,2021
7. बृजबल्लभ संप्रदाय का इतिहास, प्रभु दयाल मित्तल, मथुरा सहित संस्थान, 1968
8. २५२ वैष्णवन की वार्ता गोस्वामी गोकुलनाथ, प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास, 2008
9. आदि वैष्णवाचार्य श्री विष्णु स्वामी और उनका संप्रदाय (प्रकाशक विष्णु स्वामी महासभा वृंदावन)
10. पुष्टिमार्गीय पद संग्रह,भाग ३, वैष्णो मित्रमण्डल
11. आ.वै. श्री विष्णु स्वामी और उनका संप्रदाय,पुष्टि पद संग्रह, भाग 3, श्री कृष्ण भण्डार नाथद्वार 1981–1982